ISSN 2277 - 7865

वर्ष ३६

तित्थयर

फरवरी २०१३

अंक ११

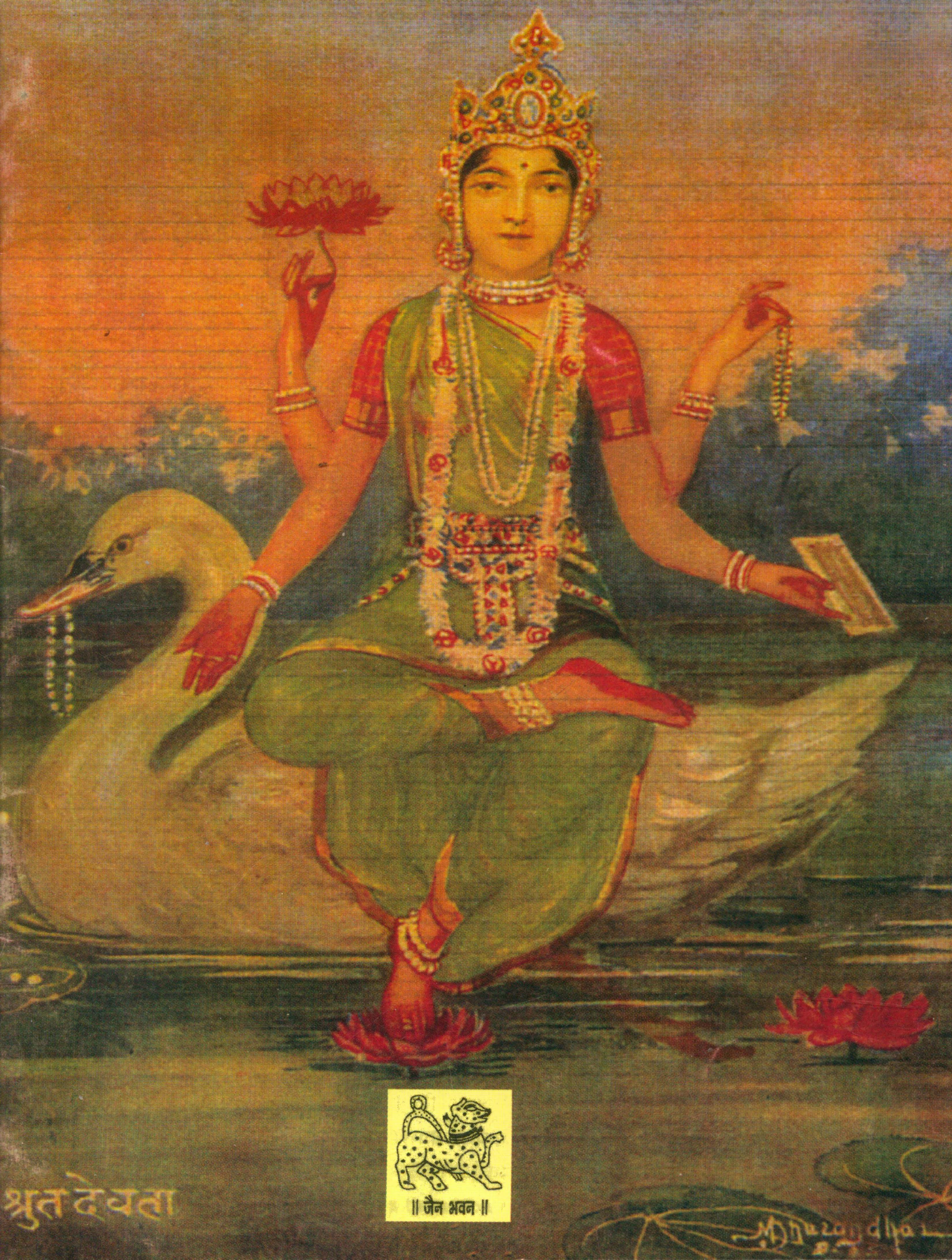

Courtesy :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट — अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा — कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़ — सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३६ अंक - ११ फरवरी २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय

पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,

Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --

Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00

Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. अहिंसा–मानव के सर्वांगीर्ण विकास की पृष्ठभूमि	डॉ. लता बोथरा	३६५
२. जैन अपभ्रंश साहित्य का मध्ययुगीन हिन्दी कथानकों पर प्रभाव	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	३७९
३. कुवलय माला		३८८

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

अहिंसा
मानव के सर्वांगीण विकास की पृष्ठभूमि

सत्य-अहिंसा की विशद् व्याख्या में अन्य चारों महाव्रतों का समावेश निहित है क्योंकि अन्य चारों व्रत अहिंसा के पोषक तत्त्व हैं। जो सत्यवादी होता है वहीं अहिंसक होता है और जो अहिंसक होता है वहीं सत्यवादी भी होता है। आचारांग में लिखा है कि **'हे पुरुष तू सत्य को भली-भाँति समझ। सत्य साधक संसार समुद्र से पार हो जाता है, सत्य साधक आत्मसाक्षात्कार कर लेता है।'** प्रश्नव्याकरण में सत्य महाव्रत के विषय में लिखा है कि **'सत्य ही भगवान है।'** उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार सत्यवादी साधक को ही ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। बंदितु सूत्र में सत्य की व्याख्या करते हुए असत्य के विषय में लिखा है कि सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार का मृषावाद होता है। हंसी दिल्लगी में असत्य बोलना सूक्ष्म मृषावाद कहलाता है तथा क्रोध और लालच वश सुशील कन्या को खराब कहना और खराब कन्या को अच्छा बताना अच्छे पशु को बुरा और बुरे को अच्छा बताना, दूसरे की जायदाद को अपनी और अपनी जायदाद या भूमि को दूसरे की साबित करना, किसी की धरोहर या अमानत को दबा लेना, झूठी गवाही देना, यह पाँच स्थूल असत्य कहलाते हैं।

कन्या गो भूम्यलीकानी, न्यासापहरणं तथा कूट साक्ष्यं च पच्चेति, स्थूलासत्यान्यकीर्तयन्।। —योगसार

ये पाँचों असत्य बुरी भावना से उत्पन्न होने के कारण निन्दनीय एवं दंडनीय होते है। अतः ऐसे असत्य नहीं बोलने चाहिए।

सर्वलोकविरुद्धं यद् यद् विश्वसितघातकम्।
यद् विपक्षश्च भूतस्य, न वदेत् तदसूनृतम्।।55।।

जो सर्वलोकविरुद्ध हो, जो विश्वासघात करने वाला हो, और जो पुण्य का विपक्षी हो यानी पाप का पक्षपाती हो, ऐसा असत्य (स्थूल मृषावाद) नहीं बोलना चाहिए।

असत्य बोलने से जो दुष्परिणाम होते है उनके बारे में कहा गया है-

असत्यतो लघीयस्त्वम्, असत्याद् वचनीयता।
अधोगतिरसत्याच्च, तदसत्यं परित्यजेत्।।56।।

अर्थात् असत्य बोलने से व्यक्ति इस लोक में लघुता (बदनामी) पाता है, असत्य से यह मनुष्य झूठा है, इस तरह की निन्दा या अपकीर्ति संसार में होती है। असत्य बोलने से व्यक्ति को नीचगति प्राप्त होती है। इसलिए असत्य का त्याग करना चाहिए।

गलत अभिप्राय से तो असत्य बोलना ही नहीं चाहिए लेकिन प्रमाद के वश में भी असत्य नहीं बोलना चाहिए। जैसे– एक बालक गाँव के बाहर पेड़ पर रोज चढ़कर चिल्लाता है शेर आ गया– शेर आ गया! बचाओ-बचाओ! गाँव वाले उसे दौड़कर बचाने आते हैं तो वह कहता है मैं तो मजाक कर रहा था। ऐसा कई दिनों तक होने के बाद एक दिन सचमुच में शेर आ गया लेकिन उस दिन उसके चिल्लाने पर भी कोई नहीं आया। सबने सोचा कि आज भी वह मजाक में असत्य बोल रहा है। इस प्रकार मजाक में बोला असत्य भी प्राणघातक बन गया। कहा भी गया है–

असत्यवचनं प्राज्ञः प्रमादेनाऽपि नो वदेत्।
श्रेयांसि येन भज्यन्ते, वात्ययेव महाद्रुमाः।।57।।

समझदार व्यक्ति प्रमादपूर्वक (अज्ञानता, मोह, अन्धविश्वास या गफलत से) भी असत्य न बोले। जैसे प्रबल अन्धड़ से बड़े-बड़े वृक्ष टूटकर नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही असत्य महाश्रेयों को नष्ट कर देता है।

कालकाचार्य अपने भांजे दत्तराजा द्वारा बन्दी बनाए जाने पर राजभय से भी असत्य नहीं बोले सत्य महाव्रत की प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे। फलस्वरूप कारागार से मुक्त हो गए।

असत्यवचनाद् वैर-विषादाप्रत्ययादयः।
प्रादुःषन्ति न के देषाः कुपथ्याद् व्याधयो यथा।।58।।

असत्य वचन बोलने से वैर, विरोध, पश्चात्ताप, अविश्वास, बदनामी आदि दोष पैदा होते हैं। जैसे कुपथ्य (बदपरहेजी) करने से अनेकों रोग पैदा हो जाते हैं, वैसे ही असत्य बोलने से कौन-से दोष नहीं हैं, जो पैदा नहीं होते? अर्थात् असत्य से भी संसार में अनेक दोष पैदा होते हैं।

असत्य बोलना हिंसा ही है। कुटिल, भयंकर, छिद्रान्वेषी व्यक्ति अपने वचन रूपी डंकों से बिच्छू के समान दूसरों को तो दुःख देता ही है, स्वयं भी दुःखी होता है। धन्य और धरण का उदाहरण हमारे सामने है कैसे सत्य बोलने वाला धन्य सभी स्थानों पर सम्मानित हुआ और असत्य वादी धरण को पग-पग पर तिरस्कार सहना पड़ा।

सुनन्दन नगर में सुदत्त नाम का श्रेष्ठी है। उसके दो पुत्र हुए। पहले का नाम था धन्य और दूसरे का धरण। धन्य सज्जन, सौम्य और प्रियवादी एवं सत्यवादी था जबकि धरण दुर्जन, दुष्ट और कटु एवं असत्यवादी। अपने सद्गुणों के कारण धन्य सर्वत्र आदर पाता और धरण का लोग तिरस्कार करते।

एक दिन धरण ने सोचा कि जब तक धन्य जीवित है मुझे तिरस्कार ही मिलेगा? वह उसे अपने साथ उद्यान में ले गया और कहने लगा—भाई धन्य। हम लोगों को स्वयं ही धन उपार्जन करना चाहिए क्योंकि हम वणिक्-पुत्र है और व्यापार से धन कमाना ही हमारा कर्तव्य है। चलो, परदेश चलते हैं।

धन्य ने उत्तर दिया—

भाई! कहते तो तुम यथार्थ हो किन्तु बिना धन के धन का उपार्जन कैसे होगा?

अनेक तरीके है धन कमाने के। किसी की गठरी छीन लेगें, कहीं चोरी कर लेगें, किसी का धन लूट लेगें।

कैसी बात कर रहे हो? अधर्म से भी कहीं धन का उपार्जन होता है और कदाचित हो भी जाय तो भी यह सर्वथा अनुचित है। मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा।

धरण ने सोचा कि तर्क करना व्यर्थ है। वह कपटपूर्वक बोला-

भाई! मैं मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। मैं भी आज से कटु वचनों का त्याग करता हूँ। परदेश जाकर हम लोग किसी की सेवा करेंगे और धन उपार्जन कर लेगें।

सरलहृदयी धन्य उसकी बातों में आ गया। दोनों भाई पिता को बताये बिना परदेश चल दिए। मार्ग में चलते-चलते धरण मन में विचार करने लगा कि ऐसा उपाय करना चाहिए कि धन्य घर को वापिस ही न लौटे। वह बोला–

बन्धु! प्राणी धर्म से सुख पाता है या अधर्म से?

इसमें पूछने की क्या बात है? धर्म से जय मिलती है और अधर्म से पराजय।

यह तुम्हारा भ्रम है। आजकल तो विजय अधर्म की होती है और धर्म को कोई पूछता भी नहीं।

धन्य ने धरण का यह तर्क नहीं माना। परिणाम-स्वरूप दोनों में विवाद होने लगा। वाक्युद्ध से बचने के लिए धरण ने कहा–

भैया! हम दोनों के परस्पर विवाद से तो निर्णय होगा नहीं। सामने गाँव दिखाई दे रहा है। वहाँ जाकर निर्णय कराए लेते हैं। जा हारेगा उसकी एक आँख फोड़ दी जायेगी। बोलो शर्त स्वीकार है।

धन्य को विश्वास था कि विजय धर्म की ही होगी। उसने शर्त स्वीकार कर ली।

गाँव में आकर दोनों भाईयों ने पूछा–धर्म की विजय होती है कि अधर्म की। उस गाँव के सभी मनुष्य अविवेकी थे। उन्होंने बता दिया कि विजय अधर्म की होती है। धन्य ने उन्हें समझाने का बहुत प्रयास किया पर सब बेकार। धन्य शर्त हार गया।

कपटी धरण ने सांत्वना देते हुए कहा–यदि तुम्हें दूसरी आंख फुड़वाना भी स्वीकार हो तो अगले गाँव में निर्णय करा लें।

धन्य सोचने लगा–सभी मनुष्य ऐसे अविवेकी थोड़े ही होते हैं। उसने यह शर्त स्वीकार कर ली। अगले गाँव में भी निर्णय धन्य के विपरीत ही हुआ। उन गाँव वालों ने बताया—पापी मौज करते हैं और धर्मात्मा दाने-दाने को मोहताज। कंजूस धनवान बन जाते हैं, दानशील धनहीन। सती स्त्रियों को जीवन भर दुःख ही मिलता है और वेश्याएँ मजे लूटती है। अतः संसार में सर्वत्र अधर्म की विजय होती है।

धरण शर्त जीत गया। धन्य ने कहा—भाई मेरे दोनों नेत्र अब तुम्हारे अधीन है जो इच्छा हो सो करो। धरण तो यह चाहता ही था। उसने अकौआ (आक) और डंडा थूअर जैसे जहरीले पौधों का रस डालकर धन्य की दोनों आँखें फोड़ डाली।

कपटी व्यक्ति अनेक प्रकार की क्रियाएँ करता है जिसे कि दूसरे के हृदय में उसके प्रति सद्भावना जागे। धरण भी रोने लगा–हाय, हाय मैंने क्या कर डाला? मैं तो हँसी कर रहा था। मुझे क्या मालूम था कि इन पौधों के रस से मेरे बड़े भाई की आँखें फूट ही जायेगी।

सरलहृदय धन्य ने उसे आश्वासन दिया–

भाई! शोक मत करो मुझमें और तुममे क्या अन्तर है? अब तुम्हीं मेरे सहारे हो। मुझ अंधे की लाठी।

इसके पश्चात् धरण बड़े भाई धन्य के साथ आगे चला। दोनों भाई चलते चलते निर्जन बन में पहुँचे। धन्य तो अन्धा था ही। धरण ने एकाएक भयभीत स्वर में कहा—

बन्धु! सिंह हम लोगों की तरफ आ रहा है। तुम्हें तो दिखाई भी नहीं देता। अब मैं क्या करूँ? हम दोनों ही मारे जायेंगे। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा मिले?

धन्य सत्यवादी तो था ही। उसने कपटी धरण की बात का विश्वास कर लिया बोला—

भाई! हम दोनों की मृत्यु से तो पिता का वंश ही नष्ट हो जायेगा। मैं तो अन्धा हूँ, घर पहुँच भी नहीं पाउँगा। तुम अपने प्राण बचाकर भाग जाओ।

नहीं! नहीं!! यह कैसे हो सकता है? बड़े भाई को मृत्यु के मुख में धकेलकर अपने प्राण बचा लूँ। ऐसा घोर अनर्थ मैं नहीं करूँगा।

यह समय भावुकता नहीं कर्तव्यपालन का है। तुम वंश के प्रति अपना कर्तव्य निभाओ। शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ।

बड़े भाई की इच्छानुसार धरण वहाँ से चल दिया। धरण की योजना पूरी हो चुकी थी। अब धन्य के घर वापिस आने की आशा भी दुराशा मात्र थी।

इधर दृष्टिहीन धन्य गिरता-पड़ता एक विशाल वट वृक्ष के नीचे पहुँचा और वहाँ बैठकर विलाप करने लगा—अरे मेरा भाई अकेला ही गया है। न जाने उसकी क्या दशा होगी? वह वन में ही भटक गया या सकुशल घर की ओर जा रहा है। हे भगवान! मैं किससे पुछूं? कौन मुझे बताएगा?

उसके करुणस्वर के कारण वनदेवी को दया आई। सामने प्रगट होकर बोली—पथिक! अपने कपटी, दुष्ट भाई की चिन्ता मत

करो। वह सकुशल है। चिन्ता अपनी करो। मैं यह गुटिका देती हूँ। इसे आँखों में लगाते ही कैसा भी नेत्र रोग हो ठीक हो जायेगा, लो।

यह कहकर वनदेवी ने गुटिका धन्य के हाथ में दी और अपने स्थान को चली गई। धन्य ने गुटिका आँखों में लगाई तो उसकी आँखों में ज्योति पूर्ववत् आ गई। दृष्टि पाकर धन्य प्रसन्न हुआ और एक ओर चल दिया।

चलते चलते धन्य सुभद्र नाम के नगर में पहुँचा। वहाँ के राजा की एक ही पुत्री थी और वह भी किसी रोग के कारण अंधी हो गई थी। राजा ने बहुत चिकित्सा कराई किन्तु परिणाम कुछ न निकला। राजा ने ढिंढोरा पिटवाया—जो भी मेरी कन्या की आँखें ठीककर देगा मैं उसे कन्या सहित आधा राज्य दे दूँगा। ढिंढोरे को सुनकर धन्य राजमहल पहुँचा और दिव्य गुटिका के प्रयोग से राजकुमारी की आंखें ठीक कर दी। वचन के अनुसार राजा ने उसे आधा राज्य और कन्या प्रदान की। धन्य का समय सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा।

एक दिन धन्य मार्ग में जा रहा था कि एक ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर कहा—राजन्! मैं परदेशी हूँ। मुझे धोती और कुछ दक्षिणा मिल जाय।

कहाँ से आ रहे हो, ब्राह्मण?
सुनन्दनपुर से।
वहाँ किसी काम से गए थे?
नहीं वहीं तो मेरा निवास है।

धन्य को अपने नगर के ब्राह्मण से मिल कर हर्ष हुआ। महल में लाकर उसने माता-पिता और धरण का कुशल समाचार पूछा तो ब्राह्मण ने बताया–वैसे तो सब कुशलता से है किन्तु धरण के यह बताने से कि बाघ तुम दोनों की ओर दौड़ा था तुम्हारे माता-पिता को बहुत दुःख हुआ। वे तुम्हारे बारे में चिन्तित रहते हैं।

ब्राह्मण की बात सुनकर धन्य ने पूछा–

और कुछ कहाँ, धरण ने?

नहीं, बाघ की घटना के अलावा और कुछ भी नहीं बताता, वह।

छोटा भाई धरण कुशलपूर्वक पिता के पास पहुँच गया इस खुशी में उसने ब्राह्मण का बहुत सत्कार किया और दान दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। उसी को जाते समय अपना नामांकित मुद्रिका और पिता के नाम पत्र लिखकर दे दिया।

पिता तो पुत्र का पत्र और उसकी समृद्धि से प्रसन्न हो गए किन्तु धरण के कलेजे पर साँप लोट गया। यद्यपि धन्य ने धरण के दुष्कृत्य और अपनी आँखें फूटने के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा था किन्तु बात कब तक छिप सकती थी? एक न एक दिन तो प्रगट होनी ही थी।

कपटी धरण का हृदय धक् धक् करने लगा। ऊपर से तो उसने प्रसन्नता प्रदर्शित की परन्तु मन ही मन भयभीत हो रहा था। उसने निर्णय किया—धन्य को वहीं जाकर कपट-जाल में फँसाकर नष्ट किया जाय अन्यथा वह कभी न कभी घातक सिद्ध होगा। उसका जीवित रहना ही बहुत बड़ा खतरा है।

धरण ने पिता से कहा–

पिताजी! मेरा मन भाई के लिए तड़पता है। उसे देखे बिना चैन नहीं पड़ता। मैं उससे मिलने जाता हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिए।

भाई का भाई के प्रति प्रेम देखकर पिता प्रसन्न हुए। उन्होंने सहर्ष आज्ञा दी और धरण भाई से मिलने के निमित्त चल पड़ा।

सुभद्रनगर पहुँचकर धरण धन्य से मिला। छोटे भाई को देखकर धन्य बहुत प्रसन्न हुआ और उसका बहुत आदर-सत्कार किया।

धन्य तो भ्रातृ-आगमन के सुखद विचारों में खोया रहता और धरण के हृदय में कुछ और ही खिचड़ी पक रही थी। उसने यह तो

भली-भाँति जान लिया था कि अन्तिम विजय धर्म की ही होती है किन्तु धन्य की समृद्धि ने उसके हृदय में ईर्ष्या की अग्नि और भी जोर से प्रज्वलित कर दी। वह उसे नाश करने का कोई निरापद उपाय सोचने लगा।

एक दिन वह राजा के पास एकांत में पहुँचा और कहने लगा-
महाराज! आप विवेकी हैं, फिर भी धोखा खा गए।
किससे? चौककर राजा ने पूछा।
धन्य ने आपको धोखा दिया है।
कैसे?

विनती सी करता हुआ मायावी धरण ने कहा—यदि आप मेरा नाम न लें तो मैं आपको सच्चाई बता सकता हूँ।

निश्चिन्त रहो। तुम्हारा नाम किसी को भी मालूम नहीं हो सकेगा। सच्चाई बताओ। महाराज ने धरण को आश्वस्त किया।

आश्वासन पाकर धरण कहने लगा—

महाराज! हमारे नगर में एक चांडाल था। वह बहुत दुष्ट और अनाचारी था। किसी कारण राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। वहीं चांडाल यहाँ आकर धन्य बन बैठा और आपकी पुत्री का पति—आपका जँवाई।

मायावी की माया चल गई। राजा को धन्य के किये हुए उपकार, सौम्य मुख मंडल, सरल हृदय, सदाचार और सत्यवादिता सभी मक्कारी दिखायी देने लगे। उसके हृदय में एक ही बात समा गई—चांडाल और मेरा जँवाई—घोर पाप है यह तो।

राजा को विचारमग्न छोड़कर धरण वहाँ से चुपचाप खिसक आया।

ऐसे अनाचारी चांडाल को जीवित रहना ही नहीं चाहिए, यह निर्णय करके राजा ने चांडालों को बुलाया और आज्ञा दी—

प्रातः जिस समय धन्य शौच को जाय उसी समय घेर कर तलवार से उसकी गरदन उड़ा देना।

चांडालों को क्या ऐतराज! उनका तो काम ही यह था।

राजाज्ञा स्वीकार की और खुशी-खुशी घर चले गए कि कल राजा के जँवाई का ताजा मांस खाने को मिलेगा।

सूर्योदय हुआ किन्तु धन्य शय्या से उठा नहीं। उसके मस्तिष्क में घोर पीड़ा हो रही थी। राजसभा में जाने का समय भी आ गया तब उसने धरण से कहा—

भाई! आज तुम मेरी जगह राजसभा में चले जाओ। मेरे ही कपड़े पहिनकर जाना और मेरे आसन पर बैठकर मेरी एवज में सभा का कार्य-संचालन करना। कोई पूछे तो कह देना धन्य शिरोव्यथा से व्याकुल है।

प्रसन्नतापूर्वक धरण राजसभा की ओर चला किन्तु मार्ग में ही उसे शौच की बाधा प्रतीत हुई। वह शौच के निमित्त गया तो वहाँ यमदूतों के समान चांडाल खड़े ही थे। उन्होंने तलवार के एक ही प्रहार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

भाई के शोक में धन्य ने खाना-पीना छोड़ दिया। राजा ने उसे समझाया—

धन्य! धरण ने तो तुम्हें मारने के लिए यह कपट जाल रचा और तुम उसके शोक में अन्न-जल का त्याग किए बैठे हो?

कैसे महाराज, मेरे भाई ने क्या किया? कैसा मायाजाल रचा?

राजा ने सब कुछ साफ-साफ बता दिया। सुनकर धन्य को बड़ा दुःख हुआ। भाई होकर भी उसने मेरे साथ सदा ही शत्रुता रखी, अधर्म का आचरण किया। न जाने किस गति में गया होगा? कैसे-कैसे दुःख भोग रहा होगा? किन्तु धन्य कर भी क्या सकता था?

बहुत समय पश्चात् नगर के बाहर उद्यान में विजय नाम के केवली भगवंत पधारे। राजा के साथ धन्य भी उसकी वन्दना के निमित्त गया। भगवान ने देशना दी। देशना के पश्चात् धन्य खड़ा हुआ और विनयपूर्वक अंजलि जोड़कर उसने पूछा—

प्रभो! मेरा भाई धरण मृत्यु पाकर कहाँ गया?

केवली भगवान ने बताया—

धन्य! तुमने तो 'स्थूल मृषावादविरमण व्रत' का पालन करके यह समृद्धि पाई और आगे भी आत्मोन्नति करोगे। तुम्हें दैवी सहायता प्राप्त हुई और लोक में तुम्हारा आदर हुआ। इसके विपरीत झूठ बोलने से धरण को प्रारम्भ में तो कुछ सफलता मिली परन्तु अन्त में उसका सर्वनाश हो गया। लोक में निन्दा फैली और मरकर भी उसकी दुर्गति ही हुई। धरण पहले तो इसी नगर में चाण्डाल की पुत्री हुआ। युवा होने पर चांडाल से ही उसका विवाह हुआ और सर्पदंश के कारण मर गया। फिर उसने इसी नगर के धोबी की पुत्री के रूप में जन्म लिया है। वह कुरूप, गूँगी और बहरी है। उसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। अभी तो वह जीवित है। किन्तु आगे भवाटवी में भटकता हुआ, दुःख पायेगा।

केवलज्ञानी की देशना सुनकर धन्य को वैराग्य हो आया और उसने आर्हती दीक्षा ले ली। कालधर्म प्राप्त कर वह देवलोक को गया। इस प्रकार सत्यव्रती आत्मोत्थान में हमेशा ऊपर रहता है और असत्यवादी पतनोन्मुख होता है।

सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाओं से बचना आवश्यक है (1) अविचार पूर्वक बोलना, (2) क्रोध का परित्याग करना, (3) लोभ का परित्याग करना, (4) भय का परित्याग करना, (5) हास्य का परित्याग करना। ये क्रोध, लोभ, भय आदि जहाँ हिंसा के कारण है वहाँ असत्य वचन के भी कारण है। अतः जो सत्य को जानता है, मन-वचन-काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता है। गाँधीजी ने कहा है– 'परमेश्वर की व्याख्याएँ अगणित हैं, क्योंकि

उसकी विभूतियाँ भी अगणित है। विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित तो करती हैं, मुझे क्षण भर के लिए मुग्ध भी करती हैं, पर मैं तो पुजारी हूँ सत्यरूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वहीं एकमात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है।'

अस्तेय– अहिंसा और सत्यव्रत की रक्षा के लिए अस्तेय व्रत का पालन जरूरी है क्योंकि चोरी करने वाला हिंसक के साथ-साथ असत्य भाषी भी होता है। इसलिए अदत्तादान या चौर्यकर्म का त्याग आवश्यक है। दूसरे के धन की चोरी करने वाला सिर्फ उसके धन की ही चोरी नहीं करता अपितु अपनी बुद्धि, विवेकरूपी भावधन का भी हरण कर लेता है। क्योंकि जिस जीव की हिंसा की जाती है उसे अधिक समय तक दुःख नहीं होता लेकिन अगर किसी का धन हरण कर लिया जाए तो पूरी जिन्दगी उसके दुःख का घाव नहीं भरता। नाही चोर को शान्ति महसूस होती है।

दिवसे वा रजन्यां वा स्वप्ने वा जागरेऽपि वा।
सशल्य इव चौर्येण नैति स्वास्थ्यं नर क्वचित्।।70।।

तीखा काँटा या तीक्ष्ण तीर चुभ जाने पर जैसे मनुष्य शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता, वैसे ही चोर को दिन-रात, सोते, जागते किसी भी समय शान्ति महसूस नहीं होती। चोरी करने वाला केवल शान्ति से ही वंचित नहीं होता, उसका बन्धु-बान्धववर्ग भी उसे छोड़ देता है।

मित्र-पुत्र-कलत्राणि भ्रातरः पितरोऽपि हि।
संसजन्ति क्षणमपि न म्लेच्छैरिव तस्करैः।।71।।

म्लेच्छों के साथ जैसे कोई एक क्षणभर भी संसर्ग नहीं करता; वैसे ही चोरी करने वाले के साथ उसके मित्र, पुत्र, पत्नी, भाई, माता-पिता इत्यादि सगे-सम्बन्धी भी क्षणभर भी संसर्ग नहीं करते।

नीतिशास्त्र में कहा है– ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुपत्नी के साथ सहवास और विश्वासघात, इन पाँच पापकर्मों को करने वाले

के साथ संसर्ग करना भी पांच महापातक हैं। चोरी करने वाला, चोरी कराने वाला, चोरी की सलाह देने वाला, उसकी सलाह व रहस्य के जानकार, चोरी का माल खरीद करने वाला, खरीद कराने वाला, चोर को स्थान देने वाला, उसे भोजन देने वाला, ये सातों राजदण्ड (दण्डविधानशास्त्र) की दृष्टि से चोरी के अपराधी कहे गए हैं।

सोमदेवाचार्य ने यशस्तिलक ग्रंथ में अचौर्य व्रत के अतिचारों के विषय में लिखा है–

मानवन्न्यूनताधिक्ये तेन कर्म ततो ग्रहः
विग्रहो संग्रहोर्यस्यास्तेयस्यैते निवर्तकाः।।

मापने के योग्य चीजों को कम देना और अधिक लेना, युद्ध के समय लोभवश पदार्थों को संग्रह करना आदि अतिचारों से बचकर ही हिंसा से बचा जा सकता है और अहिंसा के पालन में तत्परता आती है। रोहणीय चोर का उदाहरण हमारे सम्मुख है जो भगवान महावीर की वाणी को सुनकर चौर्य कर्म से विमुख होकर महाव्रत धारण कर समाधि-मरण पूर्वक शरीर छोड़कर देवलोक प्राप्त हुआ। इसलिए

दूरे परस्य सर्वस्वमपहर्तुमुपक्रमः।
उपाददीत नादत्तं तृणमात्रमपि क्वचित्।।73।।

दूसरे का धन आदि सर्वस्व हरण करने की बात तो दूर रही, परन्तु दिए बिना एक तिनका भी नहीं लेना चाहिए। उसके लिए प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए।

परार्थग्रहण येषां नियमः शुद्धचेतसाम्।
अभ्यायान्ति श्रियस्तेषां स्वयमेव स्वयंवरा।।74।।

जो शुद्धचित्त मनुष्य दूसरे का धन हरण न करने का नियम ले लेता है, उसके पास सम्पत्ति स्वयंवरा कन्या के समान स्वयं आती हैं। न कि दूसरे की प्रेरणा से, अथवा व्यापार धंधे से प्राप्त होती हैं।

उदाहरणार्थ विशाल नामक नगर में साधारण स्थिति वाले मातृदत्त और वसुदत्त दो वणिक रहते थे। वे दोनों मित्र थे परन्तु थे

विपरीत स्वभाव वाले। मातृदत्त तो स्थूल-अदत्त ग्रहण करने का प्रत्याख्यान कर चुका था किन्तु वसुदत्त अधर्मी था और तोल-माप तथा माल में हेरा-फेरी करता रहता था। फिर भी उसका धन बढ़ता नहीं था।

एक बार वे दोनों सम्मिलित रूप से व्यापार करने के लिए पुण्ड्रपुर नामक बड़े ग्राम की ओर चल दिए। ग्राम में वसुतेज नामका राजा राज्य करता था. उस राजा को कोई विश्वास पात्र कोषाध्यक्ष नहीं मिल रहा था। उसने विश्वासपात्र व्यक्ति को खोजने का एक उपाय निकाला।

एक रत्नजड़ित कुण्डल गाँव के बाहर बीच मार्ग में डाल दिया और दोनों और झाड़ों में सुभट छिपा देये। जब भी कोई व्यक्ति उस कुण्डल को उठाता, सुभट उसे पकड़ लेते और दण्ड दिलवाते। गाँव के तो सभी निवासियों को यह बात मालूम पड़ गई थी इसलिए वे तो उस कुण्डल को आँख उठाकर भी नहीं देखते थे।

कुण्डल को बीच मार्ग में डालने से राजा का आशय यह था कि कोई व्यक्ति उधर से निकले और कुण्डल को न उठावे तो उसी को अपना कोषाध्यक्ष बना लें क्योंकि वह मनुष्य ईमानदार और सदाचारी होगा।

उसी रास्ते से मातृदत्त और वसुदत्त निकले। कुण्डल उन्हें भी दिखाई पड़ा। मातृदत्त तो उसे देखकर भी अनदेखा कर गया क्योंकि अदत्त वस्तु लेना उसे कल्पता ही नहीं था। किन्तु वसुदत्त उसे उठाने लगा। मातृदत्त ने समझाया–भाई! इस कुण्डल को मत उठाओ। धर्म की कमाई ही फलती है, चोरी की नहीं।

उस समय तो वसुदत्त ने कुण्डल नहीं उठाया किन्तु बाद में वह वहाँ आया कुण्डल को उठाने लगा। सुभट अपने छिपने के स्थान से बाहर निकले और उसे राजा के पास ले जाने को तैयार हुए।

(क्रमशः)

जैन अपभ्रंश साहित्य का मध्ययुगीन हिन्दी कथानकों पर प्रभाव

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

प्राचीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन करते समय हम अपभ्रंश तथा प्राकृत के युग्म प्रभाव को नकार नहीं सकते। मध्ययुगीन हिन्दी काव्य साहित्य के सुविशाल फलक पर जब हम साहित्य के निर्माणपरक स्वरूप की बात करते हैं तो उसके पृष्ठभूमिगत नेपथ्य संरचना की भूमि को पहचानना विशेष आवश्यक है। चाहे प्राकृत हो या अपभ्रंश, दोनों भाषाओं का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी के प्राचीन (आदि-मध्य-मिश्र) कालों, उनकी निर्माणपरक प्रवृत्तियों, तथा आभ्यंतरीण सम्प्रेष्य कथानकों पर पड़ता रहा है। प्राचीन हिन्दी काव्य-साहित्य का कोई भी मूल्यांकन, इस पूर्ववर्ती प्रभावान्विति की समीक्षा बिना अधूरी है।

मध्ययुगीन हिन्दी काव्य-साहित्य को द्विभाजकीय (Dichotomic Format) स्तर पर, दो अलग वर्गों में विभाजित किया गया है। इनमें प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पौराणिक वर्ण्य विषय हैं जिनमें पौराणिक पात्र प्रधान रूप से वर्णित या व्याख्यायित किए गए हैं। प्रथम वर्ग में राम व कृष्ण जैसे चरित्र आते हैं, परन्तु द्वितीय वर्ग की विशेषता कुछ और है। यह वर्ग जनसामान्य या आम आदमी (प्राकृत जनों) को काव्य-विषय के रूप में चुनाव करता है। इनमें वीर काव्य, रासकीय (रासक) रचनाएँ तथा प्रेमाख्यानक काव्य आते हैं।

प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की जो रचनाएँ हिन्दी काव्य के आदि चरण में लिखे जाते रहे हैं उसका अधिकांश भाग, जैन साहित्य तथा जैन-चिन्तन के साथ सम्पृक्त रहा है। जैन कवि ही इनके रचयिता

तथा सम्प्रेषक रहे हैं। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना है कि जैन कवियों ने जैन पुराणों से अपने काव्य विषयों को ग्रहण किया है तथा जैन धर्म के अन्तर्विकसित स्तरों के साथ सम्पृक्त करने की कोशिश की है। जिस प्रकार प्राकृत में पौराणिक विषयों से सम्बन्धित ब्राह्मण रचनाकारों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, ठीक उसी प्रकार अपभ्रंश में पौराणिक चरित्रों व कथाओं में मौलिक परिवर्तन करके जैनेतर कवियों ने रचनाएँ की होंगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[1] इस नाते हम यह भी क़ह सकते हैं कि ब्राह्मण पौराणिक विषयीभूत हिन्दी काव्य पर अपभ्रंश रचनाओं में प्रयुक्त विषयों का प्रभाव नहीं पड़ा होगा अतः कथानुसरण के परिप्रेक्ष्य में भी हिन्दी का राम व कृष्णपरक साहित्य उपलब्ध जैन प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य से अप्रभावित ही रहा होगा।

अपभ्रंश साहित्य का सीधा सम्बन्ध लोकमानस तथा लोककथाओं से रहा है। पूर्ववर्ती अपभ्रंश-साहित्य का सुदूरप्रसारित प्रभाव परवर्ती अनेक हिन्दी कवियों द्वारा गृहीत कथानकों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस बात के प्रमाणस्वरूप हमें हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों के कथाभाव को देखना होगा। प्रेमाख्यानकों में प्रायः सभी कथाभाव (Motif) एक ही प्रकार के हैं। अपभ्रंश की कृतियों के कथाभाव विशेष तौर पर इनसे मेल रखते हैं। यह साम्य अपभ्रंश के प्रभाव को मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर स्पष्टतः दर्शाता है। हिन्दी की कृतियों में ऐसी कई कथाएँ पाई जाती हैं, जो पूर्ववर्ती प्राकृत-अपभ्रंश कृतियों में भी पाई जाती हैं।

कुछ उदाहरणों के द्वारा यह बात स्पष्ट हो सकती है। मलिक मुहम्मद जायसी के द्वारा रचित प्रेमकथा में पद्मिनी सिंहल द्वीप की बतलाई गई है। सिंहल द्वीप की सुन्दरियों के आधार पर जायसी के पूर्व

---

1. विशेष जानकारी के लिए देखिए, Helsinger, Gottfried, The Linguistic-Literary Survey of Early Hindi : A Study in Comparative Languages, P.I.U. Journal, p. 30-61 साथ ही देखें– शॉ, डॉ. रामेश्वर, संस्कृत ओ प्राकृत साहित्य : समाजचेतना ओ मूल्यायन (बंगला), पृष्ठ 300-358

अनेक प्रेमकथाओं की रचना होती रही है। चाहे कौतूहल कवि हो या हर्ष, सभी साहित्यकार अपनी कृतियों में नायिकाओं को सिंहल द्वीप से सम्पृक्त करते हैं।[2] प्राचीन हिन्दी जैन साहित्य में धनपाल रचित 'भविसयन्त कहा' (भविष्यदत्त-कथा) इस तरह का ही कथानकीय स्वरूप सम्प्रेषित करता है। इस कथा के अनुसार अनेक व्यापारी समुद्रस्थित द्वीप में व्यापार करने जाते हैं। वहाँ व्यापारी रूपवान युवा भविष्यदत्त द्वीप की सुन्दरी कुमारी भविष्यानुरूपा से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर, प्रभूत-परिमाण धनसम्पदा को लेकर लौट रहा था। मार्ग में समुद्री वात्याचक्र आता है और बंधुदत्त भी बाधक रूप में उपस्थित होता है। फिर प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता है और दोनों गजपुर लौट आते हैं। पोदनपुर के राजा भविष्यानुरूपा को न देने पर गजपुर पर चढ़ाई कर देते हैं। किन्तु वह पराक्रमी भविष्यदत्त से पराजित होता है। इस प्रकरण में भविष्यदत्त की वीरता का वर्णन और भविष्यानुरूपा की सुन्दरता को वर्णित करना कवि का उद्देश्य रहा है।[3]

कंथानक के दृष्टिकोण से अपभ्रंश व आदि-हिन्दी के संयोगमूलक तथा वियोगमूलक प्रकरणों में विशेष साम्य है। कनकामर रचित करकंडुचरिउ में करकंडु और रतिवेगा की प्रेमकथा का वर्णन है।

---

2. सिंहल द्वीप के साथ नायिकाओं की सम्पृक्ति का प्रसंग प्राचीन अपभ्रंश व प्राकृत में देखा जा सकता है। हर्ष (7वीं शताब्दी ई.) ने अपनी कृति रत्नावली नाटिका में रत्नावली को सिंहल राजा की पुत्री बताया है। ऐसे ही कौतूहल (8वीं शताब्दी ई.) अपनी कृति की नायिका लीलावती को भी सिंहल की राजकुमारी के रूप में चित्रित किया है। (देखें—डॉ. रामसिंह तोमर : प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृष्ठ 271)
3. Chaudhuri, Devendra, 'The Apabhramsha Literature and Jainism' (1988) Cinetype line Publications, Vol. I, p. 142-148, इसके अलावे देखें- डॉ. वंशीधर विद्यार्थी, धनपाल : जैन कवि एवं काव्य, त्रिकूट प्रकाशन, 1979, पृष्ठ 78.

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की यह रचना अपने मूल कथानक में अपभ्रंश काव्य-बोध की प्रभावान्विति को स्पष्ट सम्प्रेषित करती हैं। सिंहल-सुन्दरी रतिवेगा से परिणय के उपरान्त जब वे दोनों लौट रहे थे, तब एक मत्स्य आकर दोनों को अलग कर देता है। उसी समय एक विद्याधरी आकर उन्हें बचाती है।[4]

जिनदत्त चरित के रचनाकार लाखू भी अपने नायक जिनदत्त को सिंहलद्वीप अनेक व्यक्तियों के साथ पहुँचाता है। वीरतापूर्वक भयंकर सर्प को मारकर वह लक्ष्मीमति (श्रीमती) नामक राजकुमारी से विवाह करता है। अन्य द्वीपों की कुमारियों के साथ वह वैवाहिक सम्बन्ध स्थापन करता है। विपरीत परिस्थिति के तौर पर जिनदत्त का दुष्ट मामा उसे समुद्र में धकेल देता है। वह दुष्ट जाकर लक्ष्मीमति के सामने जाकर स्वयं प्रेम-प्रस्ताव रखता है। लक्ष्मीमति अपने प्रेमास्पद के प्रति सम्पूर्ण प्रतिबद्ध रहती है और अंत में विमलमति की सहायता से पति को लौटा पाती है।

अपभ्रंश के साथ प्राकृत का अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। कथावस्तु का साम्य जितना अपभ्रंश के साथ प्राचीन हिन्दी का रहा है, उतना ही साम्य प्राकृत के साथ रहा है।

उदाहरणस्वरूप हम यहाँ प्राकृत की दो साहित्यिक कृतियों का प्रसंग उठा सकते हैं। पहली कृति 'रत्नशेखर नरपति कथा' (समयकाल 15वीं शती विक्रमाब्द) है, जिसके रचनाकार जिनहर्षगणि है। दूसरी कृति नरसेन रचित श्रीपाल चरित है, जो उसी समयकाल की रचना है। दोनों के कथावस्तु में विशेष साम्य है, जिसका स्पष्ट प्रभावगत साम्य मध्यकालीन प्रेमाख्यानक कथानकों में देखा जा सकता है।

सिंहल की राजकुमारी रत्नवती का विवाह, रत्नपुरी-नृपति, महाराज रत्नशेखर से होता है। रत्नशेखर सिंहल जाता है और मन्दिर

---

4. देखिए करकंडुचरिउ, करंजा 1934, संधि 7, कडवक 5-16.

में रत्नवती का दर्शन करते हैं। वहाँ रत्नवती कामदेव की पूजा के लिए लिए आई थी। प्रभूत-परिमाण में धन-सम्पदा प्राप्त कर वह (राजा रत्नशेकर) लौट आता है। कवि द्वारा रत्नवती का अपहरण चित्रित किया गया है पर अंत में वह सबकुछ इंद्रजाल प्रमाणित होता है। 'रत्नशेखर नरपति कथा' में इस प्रकार के कथावस्तु मिलते हैं।

श्रीपाल चरित की ओर अब हमारा ध्यान आकर्षित होता है। समझने की बात है कि यह कथानक भी विशेष तौर पर साम्य रखता है। श्रीपाल एक द्वीप में जाकर सुन्दरी कुमारी रत्नमंजूषा से विवाह करता है। श्रीपाल विपरीत परिस्थितियों का सामना तब करता है जब धवल सेठ कपट द्वारा श्रीपाल को समुद्र में धकेल देता है तथा रत्नमंजूषा को प्रसन्न करना चाहता है। परन्तु जलदेवी प्रसन्न होकर उसकी सहायता करती है और अंत में वह अपने पति से मिलती है।[5] इन सभी प्रसंगों के साथ सिंहलद्वीप का उदाहरण विशेष तौर पर जुड़ा हुआ है। प्रभूत परिमाण में सम्पत्ति अर्जन करना हो या सुन्दरी स्त्रियों को संगिनी बनाना हो— नायकों के पराक्रम दिखाने का एकमात्र स्थल सिंहलद्वीप है। प्राचीन कवियों का ध्यान बार-बार इस सिंहलद्वीप की ओर ही गया है। कई सदियों तक कथानक के अन्यतम प्रमुख भौगोलिक उपादान के रूप में सिंहलद्वीप का विशेष महत्त्व है। हर्ष के समयकाल से सोलहवीं सदी तक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवियों ने सिंहल को कथा का विषय बनाया है। जायसी का पद्मावत भी ऐसे ही लोकप्रिय कथाभाव की उपज है। आज विद्वानों का यह मत है कि ऐतिहासिक पात्र के रूप में रत्नसेन भले ही सामने आया हो पर सिंहल-सुन्दरी पद्मिनी का प्रकरण व चरित्र-चित्रण, निश्चित तौर पर जायसी के पूर्ववर्ती परम्परा का ही प्रभाव है। कथा निर्वाह तथा प्रेम-परीक्षा में रत्नसेन और अलाउद्दीन को परस्पर से जोड़ना अनिवार्य था।

---

5. विस्तृत जानकारी के लिए देखें— Literary Folk Lore of the Jains, Alfred Kielhorn, (1997) pages, 1-6, 8, 1, 12.

जायसी के पहले तथा समकालीन और परवर्तीयुगीन समस्त प्रेम-कथा लेखकों में इस कथा को किसी न किसी प्रकार से अपनाने की परम्परा रही है।[6] हम एक ही साथ कई ऐसी साहित्यिक कृतियों को पाते हैं, जिनके कथाभावों (कथानक स्वरूपों) में विशेष साम्य देखा जा सकता है। इनमें, भविष्यदत्त कथा, करकंडुचरित, नरपति कथा, श्रीपालचरित आदि कृतियों के कथाभाव, यहाँ तक कि शब्दावलियों में भी हमें साम्य दृष्टिगोचर होता है।

जायसी के पद्मावत को केन्द्रीय कृति (प्रभावान्विति की दृष्टि से) मानकर चलें, तो यह देखा जा सकता है कि प्रेम आदि का विकास सभी में प्रायः एक सा है, सभी साहसपूर्ण कथाएँ हैं। 'जोगी खंड' के अन्तर्गत जायसी द्वारा योगी का जो वर्णन मिलता है, उसके सिर पर जटा, भस्मांग, मेखला, सिंघी, चक्र-धंधारी, योगपट्ट, रुद्राक्ष आदि धारण किया हुआ वह व्यक्ति है।[7] पाशुपत तथा कौलाचार्यों का वर्णन लीलावती कथा, कर्पूर मंजरी, जसहर चरित आदि कृतियों में समान रूप से देखने को मिलता है। **माधवानल कामकन्दला, ढोलामारू रा दूहा** में भी इस प्रकार के प्रसंग मिलते हैं। जायसी की कृति में श्रीपाल चरित्र की समस्या का एक पद्यांश इस प्रकार मिलता है—

सत्य जहाँ साहस सिधि पावा।[8]

---

6. देखिए, सिंह, डॉ. कन्हैया, मलिक मुहम्मद जायसी, पृष्ठ 38-54 तथा डॉ. रामसिंह तोमर, प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य तथा उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृष्ठ 270-278.

7. Mathesan, Jane, 'On the formative effects of Shaivite characters in Ancient Indian Literature' (unpublished research dissertation, 1987), I.I.O.H., Calcutta, p. 471, 482-491. इसके अलावे देखिए, त्रिपुरारि द्विवेदी (सं.) शैवसिद्धान्त संग्रह, के अन्तर्गत प्रभाव-प्रकरण सम्बन्धित व्याख्या, पृष्ठ 528-532.

8. इस पर समस्यापूर्ति विषयक अधिक जानकारी के लिए देखें– डॉ. उदयप्रताप गहलोत, हिन्दी काव्य में समस्यापूर्ति : उद्भव और विकास, पृष्ठ 182-183.

पद्मावती और रत्नसेन की भेंट वसंत ऋतु में विश्वनाथ मन्दिर में होता है। रत्नशेखर नरपति कथा में राजा अपनी प्रेमिका का दर्शन, कामदेव के मंडप में करता है। प्रेमकथाओं का यह एक अतिपरिचित तरीका माना जाता था। देवी लक्ष्मी द्वारा पद्मावती सहायता प्राप्त करती है और एक ही प्रकार के प्रसंग इस तरह के कई कथाओं में मिलते हैं। पूर्ववर्ती अपभ्रंश की कृतियों के समान ही इन प्रेमाख्यानकों के कथानकों में विशेष साम्य पाया जाता है। अपभ्रंश के कवियों ने प्राचीन लोक-परम्परा **(Folk-Tradition)** के अन्तर्गत इन लोककथाओं के आधारभूत सन्दर्भ को प्राप्त किया था। वहीं परम्परा परवर्ती पीढ़ी तक जा पहुँची और हिन्दी के कवियों ने इन कथाभावों को अपभ्रंश से अपनाया।

अपभ्रंश कथानकों का जितना प्रभाव हिन्दी प्रेमाख्यानकों को प्रभावित करता प्रतीत होता है, उतना कदाचित् अन्य काव्यधारायों पर देखा नहीं जाता। एक सीमा तक कृष्ण-काव्य के भक्तिकालीन परम्परा तथा संरचनात्मक स्वरूप में कहीं-कहीं उसका प्रभाव दीख जाता है। संस्कृत साहित्य में प्राप्त कृष्ण-कथानक तथा चरित्र चित्रण में जो स्वरूप हमें दिखाई देता है, प्राकृत अपभ्रंश के कृष्ण-कथानक, उनसे कहीं उदार और मुक्त हैं।[9] हाल रचित गाथा सप्तशती के कुछ पद्य हैं जहाँ राधा, कृष्ण और गोपियों के उल्लेख मिलते हैं।[10] जैन कवि स्वयंभू किसी प्राचीन कवि का उद्धरण देते हुए राधा के प्रति कृष्ण की आसक्ति का सुन्दर चित्रण करते हैं—

सव्वं गोविउ जइवि जोएइ, हरि सुट्ठवि आअरेण,
देह दिट्ठि जहिं कहिंबि राही।

---

9. Krishnamurthy, U.K.A. (ed.) Hindi and Ancient Indian Literature : A study in the Krishna Cult, Madras, 1969, pages 24-51.

10. इस विषय पर सहायक जानकारी के लिए देखिए— Sen, Dr. Sukumar, Sekasubhodaya of Halayudha-Misra, Edited with notes, introduction and translated into English (Bibliotheca Indica no. 286), The Asiatic Society, 1963.

को सक्कइ संवरेवि उढ्ढणअण णेंहें पलोट्टउ।[11]

अपने प्राकृत व्याकरण में हेमचन्द्र ने इसी पद्य को थोड़ा परिवर्तित रूप में उद्धृत किया है—

एक्कमेक्कउं जइवि जोएदि हरि सुट्ठु सब्बायरेण
तो वि द्रेहि जहिं कहिं वि राही।
को सक्कइ संवरेवि दड्ढनयणा नेहिं पलुट्टा।।[12]

"यद्यपि हरि सब को भलीभाँति आदरपूर्वक देखते हैं तथापि उनकी दृष्टि जहाँ राधा है वहाँ रहती है। स्नेहपूर्ण नेत्रों को कौन रोक सकता है।"

कई जगहों पर काव्यगत रसतत्त्व में माधुर्य और वात्सल्य का सांगोपांग चित्रण हमें यहाँ दिखाई देता है। इस उदारता तथा मुक्तदृष्टि को संस्कृत रसबोध में श्लील-अश्लील मान्यताओं में तथा विरोधमूलक रसाभास के तौर पर कई बार देखा गया है। काव्यबोध की स्वतंत्रता में प्राकृत-अपभ्रंश के कवि बेजोड़ हैं। पर उस सरसता में कहीं कवि कदाचित् थोड़ा दुःसाहसी भी हो जाता है। जैसे—

हरि नच्चाविउ पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोत।
एम्वहिं राह पओहरहं जं भावइ तं होउ।।[13]

"प्रांगण में हरि को नचाया, लोग विस्मय में पड़ गए, राधा के पयोधरों का जो हो, सो हो।" पुष्पदंत ने कृष्ण की बालक्रीड़ा का जो वर्णन किया है, उसमें ऐसी स्वतंत्रता देखा जा सकती है। कई ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिनमें कृष्ण तथा गोपियों का सरस वर्णन पाया जा सकता है।[14]

इस प्रकार हम यह देख पाते हैं कि स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचन्द्र के जो पद्य हैं, उनमें प्राप्त वर्णनों के आधार पर अपभ्रंश साहित्य की एक धारा के अन्तर्गत कृष्णकथा का प्रचलन हो चला था। उसी धारा का हिन्दी कृष्ण-साहित्य पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा।

---

11. स्वयंभू छन्द, ज. यू. बं. 5.3, पृष्ठ 74
12. हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण 4.442
13. वहीं, 4.420
14. वहीं, 4.420

प्राचीन हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत जैन अपभ्रंश काव्य पर सीधा प्रभाव कथानक के रूप में मिलता है। हिन्दी जैन साहित्य इस प्राचीन धारा से सीधे प्रभावित रहा है। कदाचित् काव्यात्मक सरसता की कमी के चलते इन जैन काव्यों का अध्ययन कम हुआ है। इनमें भी कुछ कवि ऐसे हैं, जो विशेष तौर पर मौलिक तथा अनुपम हैं।

हिन्दी जैन साहित्य में जो काव्यरूप मिलते हैं उनमें जैन रास साहित्य विशेष चर्चित रहा है। डॉ. रामसिंह तोमर ने आमेर शास्त्र भण्डार से कई कृतियों की हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया था। इनमें ब्रह्म रायमल्ल का भविष्यदत्त कथा (समयकाल 1633 विक्रमाब्द) एक सुन्दर कथा– कृति है।[14] इसी के साथ कई और रचनाएँ भी हैं जिनके विषय में डॉ. तोमर लिखते हैं—दोहा, चौपाइयों में रचित आदित्यवार कथा, छीतर ठौलिया रचित हौलिका चौपाई (सं. 1607), दोहा, चौपाई, वस्तु इत्यादि तथा छन्दों में रचित लालचन्द का हरिवंशपुराण (सं. 1695), सं. 1642 में रचित पाँडे जिनदास रचित जम्बूस्वामी कथा, हरिदास सोनी की धर्म परीक्षा (सं. 1700) नरेन्द्रकीर्ति का नेमीश्वर चन्द्रायण (सं. 1690), तथा ब्रह्म जिनदास का यशोधररास, नेमिजिनेश्वर रास (सं. 1615) जैसे अनेक रास कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है। इन कृतियों के विषयों से सम्बन्धित कृतियाँ, जैन प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में मिलती है।[15]

उपरोक्त हिन्दी साहित्य की धारा पर अपभ्रंश का प्रभाव निर्विवाद है।

अस्तु, अपभ्रंश की प्रभावान्विति को मुख्यतः हम हिन्दी की प्रेमाख्यानक धारा से सम्पृक्त कर देखते हैं। प्रेमाख्यानक धारा के लोक प्रचलित कथानकों का सीधा प्रभाव पूर्ववर्ती अपभ्रंश धारा की लोक-परम्परा से आई हुई है। यहीं पारम्परिक प्रभाव अपने आप में हिन्दी के प्राचीन स्वरूप का दिशानिर्देश भी करता रहा है।

---

15. तोमर, डॉ. रामसिंह, प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य और उसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृष्ठ 277

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

कुवलयमाला के साथ पाणिग्रहण :

वहीं मानभट्ट इसका पति है।

राजा ने पुनः पूछा–

गुरुदेव! कहाँ अयोध्या और कहाँ विजयानगरी? बहुत दूर का अन्तर है। क्या मैं अपनी पत्नी को साथ लेकर वहाँ जाऊं।

नहीं नरेश! यह मायादित्य का जीव है और कपट इसके हृदय से अभी तक नहीं निकल सका है। यह स्वयं अपने विवाह के लिए शर्त रखेगी।

कैसी शर्त, गुरुदेव?

यह गाथा का एक पाद लिख देगी, उसको पूरा करने वाले के साथ ही इसका विवाह होगा।

कब आयेगा, वह शुभ दिन?

जब तुम्हारा जय नाम का पट्टहस्ती मतवाला होकर बिगड़ उठेगा। उसे वश में करने वाला और उसके ऊपर आरूढ़ होकर गाथा की पाद-पूर्ति करने वाला ही इसका पति होगा और वह है कुमार कुवलयन्द्र। वह स्वयं ही यहाँ आयेगा, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं।

राजा कुछ और भी पूछना चाहते थे किन्तु तब तक मुनिराज पक्षियों के समान आकाश में उड़ गए।

कुवलयमाला को भी अपना पूर्वभव याद आ गया।

सभी महल को लौट आए।

कुवलयमाला को भी अपना पूर्वभव याद आ गया।

सभी महल को लौट आए।

अपने पूर्वभव की स्मृति के आधार पर इसने एक गाथा रची और उसका एक पाद तख्ती पर लिखकर राजमहल के द्वार पर लटकवा दिया।

राजकन्या कुवलयमाला विवाह के लिए राजी हो गई है यह सुनकर अनेक राज-पुत्र आने लगे किन्तु कोई भी पाद-पूर्ति न कर सका। हम लोग चिन्तातुर थे कि तुमने तुम्हारी चिन्ता मिटा दी। राजकुमारी तुम्हें देखकर हर्ष विभोर हो गई। सभी प्रसन्न हुए।

किन्तु एक चिन्ता मिटी तो दूसरी आ खड़ी हुई। राजकुमारी तो क्या हम सब ही यह समझे थे कि कल ही विवाह हो जायेगा। किन्तु विघ्न बनकर आ टपके-बीच में ही ज्योतिषीजी और उनके ग्रह-नक्षत्र। उन्हें शुभ और निर्दोष लग्न ही नहीं सूझा।

कुवलयमाला विरह वेदना में तपने लगी। उसने सभी प्रकार का श्रृंगार तज दिया है। पहले तो हाय-हाय भी करती थी, किन्तु तुम्हारी विरक्ति ने वह भी बन्द कर दी। अब तो वह शून्य में टकटकी लगाए घूरती रहती है। न खाती है, न पीती है, न उठती बैठती है, बस शय्या पर शव के समान पड़ी रहती है।

इसलिए कहती हूँ कुमार कि दर्शन देकर उसके शरीर में प्राणों का संचार करो।

इतना कहकर भोगवती चुप हो गई। कुवलयचन्द्र का भी हृदय भर आया। प्रिया से मिलने की इच्छा तो इसकी भी थी; किन्तु लोक-मर्यादा........! यही तो सबसे बड़ी बाधा थी। बोला—

अब आप ही बताइए, मैं क्या करूँ? कौन सा उपाय है जिससे लोक मर्यादा भी न टूटे, वृद्धजनों की आज्ञा का उल्लंघन भी न हो और उसका दुःख भी दूर हो जाय।

कुमार! प्रेमियों के मिलन का एक ही स्थान है, एकान्त।

एकान्त! कहाँ मिलेगा? क्या इस राजमहल में?

नहीं, प्रकृति की गोद में।

पहेली मत बुझाइये, स्पष्ट कहिए।

राजोद्यान के कदली कुंज में, वह स्थान एकान्त भी है और निरापद भी।

कब?

आज ही संध्या को।

ठीक है, मैं पहुँच जाऊँगा।

आपकी बड़ी कृपा। कहकर भोगवती उठी और अभिवादन प्राण करके चली गई।

मिलन का आशाप्रद समाचार सुनकर कुवलयमाला के तो प्राण ही लौट आए।

प्रेम के मामले में नारी की अपेक्षा पुरुष अधिक और उतावला होता है। संध्या से पहले ही कुमार राजोद्यान में जा पहुँचा। धूम-धूम कर उद्यान की शोभा निरखने लगा।

संध्या होते ही कुवलयमाला भी अपनी सखियों और धायमाता भोगवती के साथ उद्यान में जा पहुँची। कुवलयचन्द्र ने उन्हें दूर से देखा और जा छिपा कदली कुंज में। सखियों के साथ कुवलयमाला उद्यान-भ्रमण करने लगी। उद्यान-भ्रमण का तो बहाना था, उसकी नजरें प्रिय को खोज रही थी। जब उसे कुमार कहीं नहीं दिखाई दिया तो उसने नजरों के संकेत द्वारा ही धायमाता से पूछा–कहाँ हैं, क्या नहीं आये?

धायमाता उसके मनोभाव ताड़ गई। बोली–

वत्से! तुम थक गई होगी। इस कदली कुंज में बैठो। तुम्हारे तन-मन को शान्ति मिलेगी।

भोगवती का संकेत राजपुत्री समझ गई। उसने कदली कुंज में धड़कते हृदय से प्रवेश किया। चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगी। किन्तु मन का मीत न दिखाई दिया। वह तो छिपा बैठा था घने झुरमुट में। राजकन्या को विश्वास सा हो गया कि उन्हें मुझसे प्रेम नहीं है तभी तो वचन देकर भी नहीं आये। निराशा व्याप्त हो गई। निराश व्यक्ति को आत्महत्या ही सूझती है। कुमारी ने भी बेलों को बटकर रस्सी बनाई और अपने गले में डालने लगी। तभी कुमार हंसता हुआ अपने छिपने के स्थान से बाहर निकला और बोला—

यह बेलों का हार क्या मेरी भुजाओं के हार से तुम्हें अधिक प्रिय है?

सामने कुमार को खड़ा देख लजा गई कुवलयमाला। आगे बढ़कर कुमार ने उसे अंक में जकड़ लिया। प्यार से ठिठोली करते हुए बोला—

तुम्हारे लिये ही तो अयोध्या से यहाँ तक आया हूँ........वन, पर्वत और नदियों को लाँघता हुआ.........।

यों कहिए कि पृथ्वी मण्डल का कौतुक देखने के लिए अयोध्या से निकले थे।—कुवलयमाला ने भी हँसते हुए बात काटी।

पति के अंक में पत्नी कितनी निश्चिन्त होती है, कितनी सुखी रहती है। एक क्षण पहले आत्महत्या पर उतारू कुवलयमाला अब हँसी ठिठोली कर रही थी। दोनों प्रेम-पगी बातें कर रहे थे। समय का ध्यान किसे था? रात्रि का प्रथम प्रहर प्रारम्भ हो चुका था किन्तु इससे दोनों ही बेखबर थे।

भोगवती ने बाहर से कहा—

वत्से! राज कंचुकी विजुक आ गया है। महाराज का आदेश है अधिक समय तक बाहर नहीं रहना चाहिए।

(क्रमशः)

With best compliments

arcadia shipping limited

222, Tulsiani Chambers, Nariman Point,
Mumbai-400 021
Tel : +91 22 6658 0300 / Fax : +91 22 2287 2664
Email : arcadiashipping@vsnl.com

Ship Owners, Ship Managers

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1-2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3-6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7-8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9-11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda
   Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee-
   Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee
   Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee
   Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti
   Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs. .	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B.C. JAIN JEWELLERS
Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 017
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

TITTHAYARA
Vol XXXVI No.11
25th February 2013

Registered
No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225